उपदेश सार-संग्रह

—दिल्ली चातुर्मास के अपूर्व प्रवचन

समीक्षक : डॉ० भरत सिंह

यद्यपि परम पूज्य स्वामी देशभूषण जी महाराज के देहली चातुर्मास के अवसर पर दिए गए दैनिक प्रवचनों के संग्रह ग्रन्थ "उपदेश सार संग्रह" पर समीक्षा लिखने का न तो साहस मुझ में है और न मैं इस काम के योग्य पात्र हूं, फिर भी मुनिवर की अनुपम लोक-सेवा तथा बन्धुवर डॉ० रमेश गुप्त का स्नेहपूर्ण आग्रह मुझे इस परमोपयोगी कार्य के लिए बाध्य कर रहा है।

आज जब हम नितान्त अर्थप्रधान युग में जीवनयापन कर रहे हैं; प्रत्येक व्यक्ति का एकमात्र लक्ष्य असीमित धन-दौलत एकत्र कर मनोवाञ्छित सुख भोगना रह गया है। व्यक्ति कर्त्तव्यों को भूलकर अधिकारों की पूर्ति के लिए नारों, जुलूसों तथा प्रदर्शनों के भंवर-जाल में फंस गया है। राष्ट्र अनाचार-भ्रष्टाचार, धर्मवाद, जातिवाद और इसी प्रकार की अन्य अनेक बुराइयों में लीन हो गया है। अब जब कि राष्ट्र को एक निश्चित दिशा की ओर ले जाने वाले चरित्रवान् नेताओं का नितान्त अभाव हो, सुविचारक तपी, त्यागी साधु-संन्यासियों का अकाल पड़ा हो, समाजसेवी सज्जन समाज-सेवा की आड़ में केवल अपना स्वार्थ-साधन अपनी समाज सेवा का मुख्य अंग मानते हों, ऐसे में इस प्रकार के प्रवचनों की महती आवश्यकता प्रतीत होने लगती है। इस निराशा और निविड़ अन्धकारपूर्ण समय में यदि एकमात्र आशा की किरण कहीं नजर आती है, तो इसी प्रकार के सद्प्रयासों में।

श्री १०८ स्वामी देशभूषण जी महाराज बालब्रह्मचारी हैं और उन्होंने अपना सारा जीवन प्रथम जैन धर्म की शिक्षा-दीक्षा को प्राप्त करने तथा तत्पश्चात् उसके प्रचार-प्रसार के लिए धर्म को समर्पित कर दिया है। निश्चय ही यह बहुत बड़ा त्याग है। जो मनुष्य-जीवन इतनी अनन्त साधना के पश्चात् उपलब्ध होता है और जिसमें सामान्य इंसान दुनिया के समस्त भोगों को भोग लेना चाहता है, उस जीवन को निःस्वार्थ-भाव से समाज के उद्धार तथा धर्म की अभिवृद्धि को सौंप देना निश्चय ही एक प्रशस्य कदम है।

अपने वरेण्य जीवन में आचार्य श्री ने न जाने कितने प्रवचन दिये होंगे और न जाने कितने व्यक्तियों को उनको सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ होगा लेकिन जैसाकि आज के समाज को देखकर प्रतीत होता है व्यक्ति उपदेश-सभा में प्रवचनों को सुनने का प्रयास तो करते हैं, परन्तु उन्हें आत्मसात् कर व्यवहार में उतारने का प्रयास नहीं करते। घर आकर उसी प्रकार नाना प्रकार के छल-प्रपंचों में व्यस्त हो जाते हैं, जिस प्रकार के प्रपंचों में वे इन उपदेशों को सुनने से पहले थे। इससे प्रतीत होता है कि वे प्रवचन-सभाओं में अपने आपको इतना ध्यानावस्थित नहीं कर पाते, जितना कि उन्हें करना चाहिए और इसीलिए इन प्रवचनों का उनके व्यावहारिक जीवन पर विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं हो पाता। बहुत-से व्यक्ति तो इन सभाओं में खाना-पूर्ति करने अथवा अन्यों की दृष्टि में अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने के निमित्त ही जाते हैं, वहां से कुछ उपयोगी बात ग्रहण कर जीवन को अधिक उदात्त बनाने का प्रयास उनका नहीं रहता। ऐसा इसलिए लिखा जा रहा है कि आज समाज में पूजा-पाठ, धर्म-कर्म, भक्ति-भाव और इसी प्रकार के अन्य विचारों का ढोंग उन व्यक्तियों में अधिक पाया जाता है, जो समाज में ऐसा मिथ्या प्रदर्शन न करने वाले सात्विक-सामाजिकों की अपेक्षा अधिक निन्दनीय जीवन जी रहे हैं। यही एक ऐसा कारण भी है जिससे प्रभावित होकर लोग उक्त सद्भावों से विरक्त होते जा रहे हैं।

आचार्य देशभूषण जी ने अपने पूर्ण प्रयास से सुन्दर प्रवचन दिये, लेकिन उन सद्विचारों को यदि संग्रह नहीं किया गया होता तो उनका लाभ केवल वे ही श्रोतागण उठा सकते जो निश्चय ही सभा में कुछ ग्रहण करने के पुनीत भाव से प्रेरित होकर वहां विराजमान रहे। किन्तु उनके प्रवचनों को संग्रह करने का प्रयास अनेकानेक धर्म प्रेमियों को लाभान्वित कर सकेगा इसमें सन्देह नहीं। प्रार्थना-सभाओं में सुने गये प्रवचनों की अपेक्षा अपने अध्ययन कक्ष में एकाग्रभाव से पढ़े गये और मनन किये गये इन पुस्तकाकार उपदेशों का लाभ निश्चय ही अधिक है। क्योंकि अपने बन्द कमरे में बैठकर इस अमूल्य ग्रन्थ का अध्ययन वही व्यक्ति करना चाहेगा जो निश्चित रूप से इससे लाभान्वित होना चाहता है। अतः बहुमूल्य विचारों को पुस्तक-बद्ध करने का विचार एक बहुपयोगी उत्तम विचार है। स्वयं मुझे इन विचारों से लाभ उठाने का अवसर इसीलिए मिल पाया है कि ये लिपिबद्ध उपदेश पुस्तक के रूप में मुझे पढ़ने को प्राप्त हो सके हैं। पुस्तक के रूप में निबद्ध ये सद्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपदेश अब समाज की एक बहुमूल्य थाती बन गये हैं और अनन्त काल तक ज्ञानपिपासुओं की धार्मिक भावना, चरित्र निर्माण तथा समाजोद्धार के विचारों को प्रेरित करते रहेंगे।

"उपदेश सार संग्रह" के पारायण के पश्चात् प्रतीत होता है कि श्री देशभूषण जी महाराज के पास ज्ञान का अनन्त सागर है। समाज के संस्कार की ललक उनके पास है। अपने विचारों को पूर्णता प्रदान करने के लिए उन्होंने वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन किया है। संस्कृत ग्रन्थों को पढ़ा है। इसी प्रकार जैन धर्म सम्बन्धी प्राकृत-पाली साहित्य का उन्होंने मनन किया है। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल से सम्बद्ध श्रेष्ठ सन्तों की अमूल्य वाणी के मूल में पहुंचने का भी उन्होंने अथक प्रयास किया है। इस तमाम साहित्य का उन्होंने आलोड़न-विलोड़न ही नहीं किया अपितु उसे भलीभांति मथ कर वे उसमें से जीवनोपयोगी अनेकों बहुमूल्य भावमणियां अपने श्रोताओं के उद्धार के लिए खोज लाये हैं। उन्होंने उक्त साहित्य को पढ़ा ही नहीं, अपितु पचाया भी है। यही कारण है कि वे अपने विचारों को श्रोताओं तक पहुंचा पाने में समर्थ हुए हैं।

इस ग्रन्थ का क्षेत्र अनन्त है। इसमें आत्मा-परमात्मा, धर्म-कर्म, पूजा-पाठ, जप-तप, भक्ति-भाव जैसे आध्यात्मिक विषयों को तो सहज बोधगम्य करने का प्रयास किया ही गया है, साथ ही समाज में व्याप्त व्यक्ति तथा समाजगत बुराइयों की ओर भी श्रोताओं का ध्यान आकर्षित किया गया है। आचार्य श्री चाहते हैं कि व्यक्ति का इहलौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के जीवन का विकास हो। इसीलिए उन्होंने अपने प्रवचनों में कुलाचार को महत्त्व दिया है। जैन धर्मी होने के कारण मद्य, मांस, अण्डा आदि का सेवन न करने की प्रेरणा सामाजिकों को दी है। व्यापार में भ्रष्टाचार करने वाले जैनियों की निन्दा की है। अन्न ही से मन बनता है। अतः उत्तम सात्विक और पौष्टिक भोज्य सामग्री को ग्रहण करने की प्रेरणा उन्होंने दी है।

जीवन में सद्गुरु का महत्त्व प्रायः प्रत्येक सद्विचारक ने स्वीकारा है। प्रस्तुत ग्रन्थ में भी गुरु के महत्त्व को प्रमुखता प्रदान की गई है। इस ग्रन्थ के पृष्ठ १०८ पर लिखा है—"यह बात प्रत्येक कला तथा ज्ञान पर लागू होती है बिना गुरु के सिखाये कोई भी विद्या या कला नहीं आती।" समाज को दूषित करने वाले वामाचार की इन उपदेशों में कठोर निन्दा की गई है पृ० (३७)। पश्चिमी देशवासी जिस मांस को अनन्त शक्ति का स्रोत मानते हैं और इसे प्राप्त करने के लिए वे जिस प्रकार से अनेकानेक प्रकार के पशुओं का वध करते हैं, इसकी निन्दा भी इस ग्रन्थ में की गई है। साथ में यह भी सिद्ध किया गया है कि मांसाहारी भोजन की अपेक्षा शाकाहारी भोजन अधिक पौष्टिक एवं बलप्रद होता है। "इस तरह मांस से तिगुनी शक्ति अन्न में होती है" यह बात पृष्ठ ३९ पर कही गई है। आचार्यरत्न देशभूषण जी की मान्यता है कि चारित्रिक उत्थान के लिए भी मांस जैसे भोज्य पदार्थों का त्याग आवश्यक है।

आज के प्रदर्शन-प्रिय ढोंग-भरे इस समाज को ध्यान में रखते हुए आचार्य श्री का यह कथन कितना उपयुक्त है—"संसार में इस जीव का सबसे बड़ा शत्रु कोई पुरुष, स्त्री, पशु या कोई दृश्यमान जड़ पदार्थ नहीं है। इसका सबसे बड़ा वैरी तो एक मिथ्यात्व है जिसके प्रभाव से जीव की श्रद्धा विपरीत हो गई है।" इसी के कारण मनुष्य पूर्ण रूप से न अपने को पहचान पा रहा है और न पर को। ऐसे में परमात्मा को पहचान पाने की तो बात ही नहीं उठती। व्यक्ति की व्यावहारिक शुद्धता पर भी इन उपदेशों में बल दिया गया है। जैन समाज अधिकतर व्यवसाय पर अवलम्बित है। व्यापार में शुद्ध एवं अशुद्ध कमाई का बड़ा प्रचलन है। जो व्यापारी अशुद्ध कमाई करते हैं उन्हें अपार सम्पत्ति के स्वायत्य हो जाने पर भी सच्ची सुख-शान्ति नहीं मिल पाती। पृ० ८२ पर वे कहते हैं—"धन उपार्जन में इस तरह से अनीति, धोखेबाजी, विश्वासघात, बेईमानी का आश्रय लिया जाता है तभी आजकल पहले की अपेक्षा अधिक समागम होने पर भी लोगों की सम्पत्ति, सुख-शान्ति में, स्वास्थ्य में पारिवारिक अभ्युदय में उल्लेख करने योग्य प्रगति नहीं दिखाई देती। प्रायः प्रत्येक गृहस्थ किसी-न-किसी विपत्ति का शिकार बना हुआ है। एक ओर से धन आ रहा है, दूसरी ओर से चोरी, डकैती, मुकद्दमेबाजी बीमारी, सन्तान द्वारा अपव्यय आदि मार्गों से धन निकला जा रहा है। जिस उपार्जन के लिए दुनिया भर के पाप अनर्थ अन्याय किए जाते हैं, अपमान सहन किया जाता है, वही धन दो-चार पीढ़ी तक भी नहीं ठहरने पाता।" आज भारतीय समाज में जितना भी भ्रष्टाचार व्याप्त है उसका मूल कारण आचार्य श्री ने अतिशय अर्थलोलुपता को ही माना है। उनका यह मन्तव्य है कि जिस दिन व्यक्ति इस लोभ का परित्याग कर देगा, निश्चय ही उस दिन व्यक्ति एवं समाज दोनों का उद्धार हो जायेगा।

व्यक्तिगत राग-द्वेष तथा स्वार्थपरता की गर्हित भावना का भी खण्डन किया गया है। वे कहते हैं—"आत्मा को राग, द्वेष, क्रोध, काम आदि भावों से शुद्ध करना ही आत्मा का सबसे बड़ा हित है क्योंकि कर्म बन्धन से मुक्त होने का यही एक मार्ग है।"—पृ० १२१। स्वामी जी ने इस संसार में विद्यमान समस्त पदार्थों में आत्मा को सर्वोपरि सिद्ध किया है। अतः उसी का उद्धार करना प्राणी मात्र का परम कर्त्तव्य है। तभी व्यक्ति सांसारिक चक्र से भी मुक्त हो सकता है। समाज के प्रति अपना दायित्व ध्यान में रखते हुए आचार्यरत्न देशभूषण जी ने समाज में व्याप्त नाना प्रकार की बुराइयों के प्रति भी सामाजिकों का ध्यान आकर्षित किया है। समाज जिन चोरी-डकैती, हिंसा, जुआ, शराब एवं दहेज जैसी कुरीतियों से ग्रसित है, उनके उन्मूलन के प्रति भी वे सजग हैं। कन्या के लिए योग्य वर को ध्यान में रखते हुए वे कहते हैं—कन्या के योग्य गुणी, स्वस्थ, सदाचारी वर को प्रमुख रूप से देखा जावे, केवल धन देखकर दुर्गुणी, रोगी, अशिक्षित, दुर्जन, प्रौढ़, वृद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि अयोग्य वर के साथ कन्या का विवाह न किया जाए। इसी तरह अपने पुत्र के लिए कन्या लेते समय दहेज के धन पर दृष्टि न रखकर शिक्षित, गुणी, विनीत, सुन्दर कन्या को विशेषता देनी चाहिए।" "विवाह शादी आदि के ऐसे सरल कम खर्चीले नियम बनाने चाहिए जिससे समाज का ग़रीब से ग़रीब व्यक्ति भी अपने पुत्र-पुत्रियों का विवाह सम्बन्ध कर सके।" पृ० १५२।

आचार्य जी समाज के सर्वांगीण विकास के पक्षपाती हैं। उनके अनुसार समाज का आनुपातिक विकास तभी सम्भव है, जबकि व्यक्ति अहिंसा, सत्य, त्याग, दान, सहयोग एवं पारस्परिक सहानुभूति से प्रेरित होकर स्वयं की अपेक्षा पर के विकास की ओर अधिक उन्मुख होगा। इसके लिए उन्होंने सामाजिक सहयोग पर अत्यधिक बल दिया है। यही वह मंत्र है, जिसके द्वारा समाज का समुचित विकास सम्भव है। धनी लोगों द्वारा निर्धनों की सहायता के विषय में पृ० १८८ पर वे कहते हैं—"यथाशक्ति थोड़ी बहुत द्रव्य की सहायता देकर उस बेकार भाई को छोटे-मोटे काम-धन्धे में लगा देना चाहिए।"

इस प्रकार "उपदेश सार संग्रह" में निश्चय ही बहुत उपयोगी बातों का उल्लेख है। यदि सभी मनुष्य इस प्रकार के परोपकारी धर्मात्मा साधुओं के उपदेशों का रस-पान कर अपने चरित्र में ढाल सकते तो इस बात में ज़रा भी सन्देह नहीं कि समाज का कब का उद्धार हो चुका होता। उपदेश देने की शैली अत्यधिक सहज सरल है। तरह-तरह के दृष्टान्त, उदाहरण एवं प्रमाणों को उद्धृत कर वे अपनी गूढ़-से-गूढ़ बात को भी अत्यधिक सरल बना देते हैं। थोड़ा-सा भी ज्ञान रखने वाला श्रोता उनके उपदेशों का रस-पान करने में पूर्णतः सक्षम हो सकता है। वैदिक संस्कृत, संस्कृत, प्राकृत एवं पाली तथा हिन्दी के जो भी प्रमाण उन्होंने दिये हैं और जिस प्रकार से उनकी व्याख्या की है उससे लगता है, उक्त भाषाओं पर उनकी पूर्ण पकड़ है। उपदेश के लिए उन्होंने हिन्दी के जिस रूप को चुना है वह अपने आप में पूर्ण विकसित तो है ही, सहज बोधगम्य भी है। इसीलिए आशा की जाती है कि प्रत्येक ज्ञान-पिपासु व्यक्ति इस ग्रंथ से पूर्ण रूप से लाभान्वित हो सकेगा। निश्चय ही यह ग्रन्थ व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र को विकास की एक नई दिशा देने में समर्थ हो सकेगा, ऐसी मुझे आशा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org